

उच्च न्यायालय, पटना के क्षेत्राधिकार में
2018 की सिविल विविध क्षेत्राधिकार संख्या- 1579

=====

निर्मला देवी, पति स्वर्गीय उपेन्द्र प्रसाद अम्बष्ठ, निवासी-मारुफगंज, वार्ड नं.22, थाना + पोस्ट +जिला-सहरसा।

..... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. हीरा लाल स्वर्णकार, पिता रामकृष्ण स्वर्णकार
2. राजेंद्र स्वर्णकार, पिता रामकृष्ण स्वर्णकार
दोनों निवासी सोनवर्षा बाजार, थाना + पोस्ट -सोनवर्षा, जिला- सहरसा।
3. संतोष कुमार सिन्हा
4. अजीत कुमार सिन्हा उर्फ राजीव कुमार
5. सिंकू कुमार सिन्हा
सभी पिता स्वर्गीय उपेन्द्र प्रसाद अम्बष्ठ, निवासी मारुफगंज, वार्ड नं. 22, पोस्ट + थाना + जिला-सहरसा।

..... उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति :

याचिकाकर्ता/ओं की ओर से : श्री आदित्य प्रकाश सहाय, अधिवक्ता
श्री पीयूष तिवारी, अधिवक्ता

प्रतिवादी/ओं की ओर से : श्री दिवाकर प्रसाद सिंह, अधिवक्ता

=====

आवेदन - विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध दायर किया गया, जिसके अंतर्गत वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई है।

अपीलकर्ता को प्रतिवादी द्वारा दैनिक वेतन पर ड्रेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। कुछ वर्षों के पश्चात उसकी सेवा नियमित कर दी गई। वेतन भुगतान के संबंध में व्यथित अपीलकर्ता ने संबंधित प्राधिकारी के समक्ष अपना पक्ष रखा, जिसे खारिज कर दिया गया। अपीलकर्ता ने अस्वीकृति आदेश को चुनौती देते हुए रिट दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया।

अपीलकर्ता ने कोई नियुक्ति पत्र या अन्य कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया, जिससे पता चले कि उसकी सेवा विशेष तिथि को नियमित की गई थी तथा उसने यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज भी प्रस्तुत नहीं किया कि उसे विशेष पद पर नियुक्त किया गया था। (पैरा 8)

अपनी सेवा की नियुक्ति या नियमितीकरण के संबंध में किसी दस्तावेज के अभाव में, अपीलकर्ता ने ऐसा कोई मामला नहीं बनाया है, जिससे विवादित आदेश में हस्तक्षेप किया जा सके। (पैरा 9)

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

=====

कोरम: माननीय श्री न्यायमूर्ति अरुण कुमार झा

सी.ए.वी. निर्णय

दिनांक: 07-05-2024

वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत विद्वान मुंसिफ, सहरसा द्वारा निष्पादन वाद संख्या- 2/2003 में पारित दिनांक 05.07.2018 के आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपति याचिका को विद्वान निष्पादन न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है।

2. संक्षेप में कहा जाए तो मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के पिता रामकृष्ण स्वर्णकार ने एक मामला निष्पादित किया। दिनांक 11.08.1983 को याचिकाकर्ता के पति उपेंद्र प्रसाद अंबष्ठ के पक्ष में सशर्त बिक्री का पंजीकृत बंधक विलेख दिनांक 07.08.1986 को बंधककर्ता रामकृष्ण स्वर्णकार ने सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम (जिसे आगे 'टी.पी. अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 83 के अन्तर्गत विद्वान मुंसिफ के समक्ष याचिका दायर की, जिसे विविध मामला संख्या- 08/1986 के रूप में क्रमांकित किया गया। दिनांक 30.09.1986 को विद्वान मुंसिफ ने विविध वाद संख्या 08/1986 में आदेश पारित किया कि बंधककर्ता उपेंद्र प्रसाद अंबष्ठ को बेदखल करने के लिए सुनवाई करना संभव नहीं है। तत्पश्चात, पुनः दिनांक 01.10.1986 को बंधककर्ता रामकृष्ण स्वर्णकार ने एक नया वाद दायर किया। धारा 83 के तहत याचिका बंधकदार के खिलाफ टी.पी. अधिनियम जिसे विविध के रूप में मामला संख्या 10/1986 क्रमांकित किया गया था। उक्त विविध में प्रकरण संख्या 10/1986, दिनांक 30.06.1987 के आदेश के अनुसार विद्वान मुंसिफ ने एक आदेश पारित किया जिसमें बंधककर्ता को आदेश की तिथि से एक माह के

भीतर विवादित संपत्ति खाली करने और बंधककर्ता को कब्जा देने का निर्देश दिया गया, अन्यथा बंधककर्ता को आदेश की तिथि से एक माह के भीतर विवादित संपत्ति खाली करने और बंधककर्ता को कब्जा देने का निर्देश दिया गया। न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से संपत्ति का कब्जा। विविध प्रकरण संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश से व्यथित होकर, बंधककर्ता, याचिकाकर्ता के पति ने इस वर्ष के पूर्व सिविल संशोधन संख्या 956/1987 न्यायालय के समक्ष दायर किया। यद्यपि उक्त सिविल पुनर्निरीक्षण में कोई स्थगन आदेश पारित नहीं किया गया था, परन्तु उक्त सिविल पुनर्निरीक्षण के स्वीकार किए जाने के कारण, विविध प्रकरण संख्या 10/1986 की आगे की कार्यवाही पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा रोक लगा दी गई थी। दिनांक 10.07.1991 को बंधककर्ता ने उक्त सिविल संशोधन संख्या 956/1987 वापस ले लिया। तत्पश्चात दिनांक 08.01.1996 को विद्वान मुंसिफ ने विविध मामला संख्या 10/1986 को चूक के कारण खारिज कर दिया। उक्त विविध मामला संख्या 10/1986 को खारिज किए जाने के पश्चात, बंधककर्ता ने दिनांक 08.01.1996 के चूक के लिए बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने और सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलम्ब की क्षमा के लिए याचिका के साथ विविध मामला संख्या 10/1986 को बहाल करने के लिए विविध मामला संख्या 05/2002 दायर किया। हालाँकि, विविध मामला संख्या 05/2002 को विद्वान मुंसिफ द्वारा दिनांक 29.11.2002 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात दिनांक 09.07.2003 को प्रतिवादी संख्या 1 एवं 2 द्वारा विविध वाद संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश के निष्पादन हेतु निष्पादन वाद संख्या 02/2003 दायर किया गया। परन्तु विद्वान मुंसिफ, सहरसा डिक्री धारकों द्वारा दायर उक्त निष्पादन मामले को दिनांक 12.11.2003 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया कि डिक्री धारकों द्वारा निष्पादन के लिए दायर पूर्व आवेदन को खारिज कर दिया गया है और इस तथ्य को डिक्री धारकों द्वारा दबा दिया गया था।

निष्पादन मामला क्रमांक 02/2003 में पारित आदेश दिनांक 12.11.2003, प्रतिवादी संख्या-1 ने सिविल रिवीजन संख्या 206/2004 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिस पर अंततः सुनवाई हुई और इस न्यायालय द्वारा दिनांक 13.12.2004 के आदेश के तहत उक्त दीवानी पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते हुए उसका निपटारा कर दिया गया। इसके बाद, दिनांक 07.01.2005 को याचिकाकर्ता/न्यायमूर्ति के पति ने -देनदार ने दीवानी पुनरीक्षण संख्या 206/2004 में पारित दिनांक 13.12.2004 के आदेश की समीक्षा के लिए दीवानी समीक्षा संख्या- 04/2005 दायर किया, जिस पर अंततः सुनवाई हुई और दिनांक 13.09.2005 के आदेश के तहत इस न्यायालय द्वारा उसे खारिज कर दिया गया। दिनांक 13.09.2005 के खारिज आदेश के विरुद्ध में, याचिकाकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 20854/2006 दायर करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। तत्पश्चात दिनांक 30.09.2013 को उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या- 20854/2006 को वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया तथा याचिकाकर्ता को विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन याचिका की स्थिरता का प्रश्न उठाने की छूट दी गई। इसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन मामले की स्थिरता के संबंध में आपति याचिका दायर की, जिसे विद्वान मुंसिफ, सहरसा द्वारा दिनांक 05.07.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तथा उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान सिविल विविध याचिका में चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान निष्पादन न्यायालय ने कुछ भौतिक तथ्यों की अनदेखी की है तथा कानून को उचित तरीके से लागू करने में विफल रहा है तथा इस कारण से उसने अवैधता तथा अधिकार क्षेत्र की त्रुटि की है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत पारित आदेश एक मंत्रिस्तरीय आदेश है और

इसे निष्पादित नहीं किया जा सकता है। चूंकि यह निष्पादन योग्य आदेश नहीं है, इसलिए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत, अदालत के पास पक्षों के बीच लंबित किसी भी लिस का न्यायनिर्णयन करने का कोई अधिकार नहीं है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत केवल विविध मामला बंधककर्ता द्वारा दायर किया गया था और इस तरह, उसमें पारित किसी भी आदेश को सुनवाई योग्य और अंतिम रूप से तय नहीं माना जा सकता है। बेशक, बंधककर्ता ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 और 91 के तहत कोई याचिका दायर नहीं की, जिसमें लिस का अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन किया जा सकता था। बंधककर्ता को संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 और 91 के तहत मोचन के लिए मुकदमा दायर करना चाहिए था, लेकिन उसने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत एक विविध मामला दायर करना चुना और इस कारण से, विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा कभी कोई डिक्री तैयार नहीं की गई। किसी डिक्री के अभाव में निष्पादन मामला संधारणीय नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि बंधककर्ता/डिक्री धारक/प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने बिना किसी डिक्री और शपथ पत्र के निष्पादन याचिका दायर की। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान मुंसिफ ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **विश्वनाथ प्रसाद सिंह बनाम राजेंद्र प्रसाद सिंह और अन्य** के मामले में निर्धारित कानून की सराहना नहीं की, **(2006) 4 एससीसी 432** में रिपोर्ट किया गया, जिसमें यह माना गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत शुरू की गई कार्यवाही केवल मंत्रिस्तरीय प्रकृति की है और यह नहीं माना जा सकता है कि मामले की सुनवाई हुई और अंतिम रूप से निर्णय लिया गया। यह भी देखा गया है कि बंधककर्ता द्वारा जमा राशि स्वीकार करने से इनकार करने की स्थिति में, बंधककर्ता के पास संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 91 के अनुसार मोचन के लिए मुकदमा चलाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। विद्वान वकील ने आगे बताया कि बंधककर्ता/डिक्री धारक ने हलफनामे के साथ कोई

याचिका दायर नहीं की। न तो संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत दायर याचिका हलफनामे द्वारा समर्थित थी और न ही निष्पादन मामला संख्या 02/2003 हलफनामे द्वारा समर्थित था और ऐसा कार्य स्पष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 15 (4) का उल्लंघन करता है (जिसे आगे 'कोड' कहा जाता है)। इसके अलावा, विद्वान मुंसिफ ने यह बिंदु भी नहीं देखा कि विविध मामला संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश को निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि दिनांक 30.06.1987 का आदेश 08.01.1996 को लागू नहीं था। विविध मामला संख्या 10/1986 को चूक के कारण खारिज कर दिया गया और विविध मामला संख्या 05/2005, जो विविध की बहाली के लिए दायर किया गया था। विविध मामला नंबर 10/1986 और बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने के लिए दायर याचिका भी 29.11.2002 को खारिज कर दी गई और इस तरह, 08.01.1996 के डिफॉल्ट में बर्खास्तगी के आदेश को अंतिम रूप दिया गया। विद्वान वकील ने आगे कहा कि विद्वान मुंसिफ ने इस तथ्य की सराहना नहीं की कि निष्पादन मामला नंबर 02/2003 सीमा के कानून द्वारा वर्जित था और विलय का सिद्धांत लागू नहीं होगा। 12 वर्ष की सीमा अवधि 10.07.1991 से नहीं गिनी जाएगी, जिस दिन याचिकाकर्ता के पति द्वारा दायर सिविल पुनर्निरीक्षण याचिका को वापस ले लिया गया था, बल्कि सीमा अवधि 30.06.1987 से शुरू होगी और 30.06.1987 के आदेश को खारिज करने के आदेश के साथ विलय नहीं किया जा सकता क्योंकि उस पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान मुंसिफ ने इस तथ्य को नहीं समझा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 20854/2006 में पारित दिनांक 30.09.2013 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन कार्यवाही की स्थिरता का प्रश्न उठाने की स्वतंत्रता प्रदान की है और इस प्रकार याचिकाकर्ता ने निष्पादन मामले की स्थिरता के संबंध में

आपत्ति दर्ज की, लेकिन विद्वान मुंसिफ ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता की अनदेखी की और केवल उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर स्थिरता की याचिका को खारिज कर दिया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता बंधककर्ता की पत्नी है और वह विवादित संपत्ति में रह रही है जिसके लिए निष्पादन की मांग की जा रही है और उसके तर्क पर विद्वान निष्पादन न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आरोपित आदेश अवैध, मनमाना और दुर्भावनापूर्ण है तथा इसे निरस्त किया जाना चाहिए।

4. *इसके विपरीत*, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्क का पुरजोर विरोध किया। प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि बंधककर्ता एक वकील है तथा अपने पद का लाभ उठाकर वह पिछले 37 वर्षों से मामले को खींच रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरोपित आदेश में कोई कमी नहीं है तथा याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान याचिका में उठाए गए सभी आधारों पर इस न्यायालय द्वारा सिविल रिवीजन संख्या 206/2004 में विचार किया जा चुका है तथा याचिकाकर्ता के पति ने विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 20854/2006 दायर करके मामले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में भी उठाया, लेकिन उन्हें कोई राहत नहीं मिली। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के पति की चालाकी के कारण प्रतिवादियों को इधर-उधर भटकना पड़ रहा है और चूंकि प्रतिवादियों का मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय में भी मान्य है, इसलिए मामले में अब कुछ नहीं बचा है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि केवल तकनीकी बातों के कारण मूल न्याय में बाधा नहीं डाली जा सकती और डिक्री की अनुपस्थिति विविध मामला संख्या 10/1986 में पारित आदेशों के निष्पादन में बाधा नहीं बनेगी, जो उस संपत्ति का खाली कब्जा सौंपने के लिए है जिसके लिए निष्पादन मामला दायर किया गया है। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि

आरोपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और याचिकाकर्ता की आपति याचिका को विद्वान निष्पादन न्यायालय द्वारा सही रूप से खारिज कर दिया गया है।

5. मैंने पक्षों के प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतिकरण पर गहन विचार किया है। याचिकाकर्ता की ओर से सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण प्रस्तुतिकरण यह आया है कि जिस आदेश को निष्पादित करने की मांग की जा रही है, वह मंत्रिस्तरीय आदेश होने के कारण बिल्कुल भी निष्पादन योग्य नहीं है। हालांकि, पहले चर्चा किए गए तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि शुरू में विविध मामला संख्या 08/1986 बंधककर्ता द्वारा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 83 के तहत स्थापित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि बंधक की अवधि समाप्त हो रही थी, लेकिन बंधककर्ता ने बंधक राशि को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और इसलिए, बंधककर्ता बंधक राशि को अदालत में जमा करना चाहता था और आगे बंधक विलेख के मोचन और आवासीय संपत्ति को बंधककर्ता को सौंपने की प्रार्थना की। हालांकि, अभिलेख से यह भी प्रतीत होता है कि बाद में, विविध में एक आवेदन दायर किया गया था। बंधककर्ता द्वारा मामला संख्या 08/1986 प्रस्तुत किया गया, जिसमें प्रार्थना की गई कि बंधककर्ता को बंधक मकान खाली करने का आदेश दिया जाए तथा यदि बंधककर्ता कोई बाधा उत्पन्न करता है, तो परिसर खाली करने के लिए उचित आदेश पारित किए जाएं। यह भी प्रतीत होता है कि इस याचिका को अलग-अलग विविध मामले के रूप में माना गया तथा विविध मामला संख्या 10/1986 संस्थित किया गया, जिसमें दिनांक 30.06.1987 का आदेश पारित किया गया, जो कि निष्पादन मामला संख्या 02/2003 के तहत विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन मामले का विषय है। यह उल्लेख करना उचित है कि बंधककर्ता/निर्णय-देनदार ने सिविल पुनर्निरीक्षण संख्या 956/1987 दायर किया, जिसे दिनांक 10.07.1991 को वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया। इसका अर्थ है कि दिनांक 30.06.1987 का आदेश अंतिम हो गया।

6. इसके बाद, बंधककर्ता द्वारा दायर निष्पादन मामला समय बीत जाने के कारण दिनांक 12.11.2003 को खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश से व्यथित होकर बंधककर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष सिविल पुनर्निरिक्षण संख्या 206/2004 प्रस्तुत किया तथा इस न्यायालय ने अपने दिनांक 13.12.2004 के आदेश द्वारा बंधककर्ता की उपरोक्त सिविल पुनर्निरिक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात, निर्णय-ऋणी ने इस न्यायालय के समक्ष दीवानी समीक्षा संख्या 04/2005 प्रस्तुत किया तथा उक्त सिविल रिव्यू याचिका इस न्यायालय द्वारा दिनांक 13.09.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। दीवानी पुनरीक्षण संख्या 206/2004 में पारित दिनांक 13.12.2004 के आदेश तथा दीवानी समीक्षा संख्या 04/2005 में पारित दिनांक 13.09.2005 के आदेश के विरुद्ध बंधककर्ता/न्याय-देनदार द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 20854/2006 को वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया तथा याचिकाकर्ता को विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन याचिका की स्थिरता का प्रश्न उठाने की स्वतंत्रता दी गई।

7. घटनाओं के काल-क्रम और विभिन्न न्यायालयों के आदेशों की चर्चा याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत इस दलील पर विचार करने के लिए की गई है कि विविध मामला संख्या 08/1986 में पारित आदेश निष्पादन योग्य नहीं था क्योंकि यह एक मंत्रिस्तरीय आदेश था और विद्वान निचली अदालत द्वारा डिक्री पर तैयार किया गया था। हालाँकि, मुझे ऐसा तर्क भ्रामक लगता है। विविध मामला संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश को मंत्रिस्तरीय आदेश नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह विविध मामला संख्या 08/1986 का हिस्सा नहीं था, बल्कि यह एक अलग कार्यवाही थी। याचिका में प्रावधान का नामकरण या उल्लेख या गलत उल्लेख मामले की योग्यता की सराहना के रास्ते में नहीं आएगा, अगर यह इसकी सामग्री और अदालत के समक्ष मांगी गई राहत के विचार पर आधारित है। इसलिए, केवल इस आधार पर कि प्रारंभिक याचिका में संपत्ति अंतरण

अधिनियम की धारा 83 जैसे कुछ प्रावधानों का उल्लेख किया गया था और जिस आदेश में निष्पादन की मांग की जा रही है, वह किसी अन्य आवेदन पर किसी प्रावधान का उल्लेख किए बिना पारित किया गया था, बाधा नहीं होगी और यह न्याय को आगे बढ़ाने का कारण है जिसे हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पृथ्वीराज सिंह नोधुभा जडेजा बनाम जयेश कुमार छकदास शाह और अन्य** के मामले में (2019) 9 एससीसी 533 में रिपोर्ट किया कि यदि न्यायालय के पास ऐसा आदेश पारित करने की शक्ति उपलब्ध है तो केवल गलत प्रावधान का उल्लेख करना आवेदन के लिए घातक नहीं है। इसके अलावा, कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायालय के पास एक आवेदन पर विचार करने की अंतर्निहित शक्ति है जिसमें गलत प्रावधान का उल्लेख किया गया है और यह सामान्य बात है कि गलत वैधानिक प्रावधानों को उद्धृत करने से कोई बाधा नहीं बनती है और आवेदन पर विचार करने के रास्ते में बाधा नहीं बनती है। दिनांक 30.06.1987 के आदेश को बंधककर्ता/निर्णय-देनदार द्वारा सिविल पुनर्निरीक्षण संख्या 206/2004 में चुनौती दी गई थी और उसे बरकरार रखा गया था। इसके बाद, विविध मामले संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश के निष्पादन के लिए शुरू की गई निष्पादन कार्यवाही को सिविल पुनर्निरीक्षण संख्या 206/2004 में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उचित माना गया है, बल्कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विद्वान निष्पादन न्यायालय को निष्पादन मामले को उसके तार्किक निष्कर्ष तक जारी रखने का निर्देश दिया है। इस प्रकार, निष्पादन कार्यवाही को भी उचित और कानूनी माना गया और इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के ऐसे निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी गई और एसएलपी (सी) संख्या 20854/2006 को भी वापस ले लिया गया। इसलिए निष्पादन कार्यवाही को चुनौती मुख्य रूप से इस तथ्य के संबंध में है कि ऐसी कोई भी डिक्री नहीं है जिसे निष्पादित किया जा सके।

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सर सोभा सिंह एंड सन्स (पी) लिमिटेड बनाम शशि मोहन कपूर (मृतक) विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से** के मामले में (2020) 20 एस सी सी 798 में रिपोर्ट की गई, पैराग्राफ संख्या 39 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

“39. यह हमें अगले प्रश्न की जांच करने के लिए ले जाता है, अर्थात् अपीलकर्ता द्वारा दायर निष्पादन आवेदन के साथ डिक्री की प्रति दाखिल न करने का क्या प्रभाव है। हमारे विचार में, भले ही अपीलकर्ता ने निष्पादन आवेदन के साथ डिक्री की प्रमाणित प्रति दाखिल नहीं की, क्योंकि इसे अदालत द्वारा पारित नहीं किया गया था, फिर भी अपीलकर्ता द्वारा दायर निष्पादन आवेदन, हमारे विचार में, बनाए रखने योग्य था। वास्तव में, जब तक औपचारिक डिक्री पारित नहीं की गई थी, तब तक 1-6-2012 के आदेश को संहिता के आदेश 20 नियम 6-ए (2) के आधार पर अंतराल अवधि के दौरान डिक्री के रूप में माना जाना था। दूसरे शब्दों में, इस तथ्य के बावजूद कि डिक्री पारित नहीं हुई थी, फिर भी संहिता के आदेश 20 नियम 6-ए (2) में रेखांकित सिद्धांत के आधार पर, दिनांक 1-6-2012 के आदेश में निष्पादन के प्रयोजनों के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए न्यायालय द्वारा डिक्री के वास्तविक पारित होने की तिथि तक डिक्री का प्रभाव था। इसने निष्पादन न्यायालय को निष्पादन आवेदन पर विचार करने और प्रतिवादी द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने का अधिकार दिया।”

इसलिए औपचारिक डिक्री न होने पर भी निष्पादन आगे बढ़ सकता है।

9. इसके अलावा, यह स्थापित कानून है कि न्यायालय की प्रक्रिया और प्रक्रिया के कानून का निर्णय-देनदारों द्वारा दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि न्यायालय की प्रक्रिया और प्रक्रिया के कानून का न्याय-देनदारों द्वारा इस तरह से दुरुपयोग न किया जाए कि वे लेनदारों के साथ धोखाधड़ी करें, जिन्होंने अपने कानूनी अधिकारों के अनुसार डिक्री प्राप्त की है। (*कुंअर जंग बहादुर बनाम बैंक ऑफ अपर इंडिया लिमिटेड, एआईआर 1925 अवध 448* में रिपोर्ट किया गया)।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण और अन्य बनाम एमएसटी काटिजी और अन्य* के मामले में (1987) 2 एससीसी 107 में रिपोर्ट किया गया पारा 3 में निम्नानुसार माना है:

“3. विधानमंडल ने भारतीय सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के किसी भी प्रावधान के तहत आवेदन के अलावा कोई भी अपील या कोई भी आवेदन, निर्धारित अवधि के बाद स्वीकार किया जा सकता है यदि अपीलकर्ता या आवेदक अदालत को संतुष्ट करता है कि उसके पास अपील को आगे बढ़ाने या ऐसी अवधि के भीतर आवेदन करने के लिए पर्याप्त कारण था।] को अधिनियमित करके देरी को माफ करने की शक्ति प्रदान की है। ताकि अदालतों को "गुण-दोष" के आधार पर मामलों का निपटारा करके पक्षों को पर्याप्त न्याय करने में सक्षम बनाया जा सके। विधानमंडल द्वारा नियोजित अभिव्यक्ति "पर्याप्त कारण" अदालतों को कानून को सार्थक तरीके से लागू करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त रूप से लचीला है जो न्याय के उद्देश्यों को पूरा करता है - जो कि अदालतों की संस्था के अस्तित्व का जीवन-उद्देश्य है। यह सर्वविदित है कि यह न्यायालय इस न्यायालय में स्थापित मामलों में उचित रूप से उदार दृष्टिकोण अपना

रहा है। लेकिन ऐसा लगता है कि यह संदेश पदानुक्रम में अन्य सभी न्यायालयों तक नहीं पहुँचा है। और इस तरह का उदार दृष्टिकोण सिद्धांत रूप में अपनाया जाता है क्योंकि यह महसूस किया जाता है कि:

“1. आम तौर पर एक वादी को देरी से अपील दायर करने से कोई लाभ नहीं होता है।

2. देरी को माफ करने से इनकार करने के परिणामस्वरूप एक योग्य मामले को शुरुआत में ही खारिज कर दिया जा सकता है और न्याय का कारण विफल हो सकता है। इसके विपरीत जब देरी को माफ किया जाता है तो सबसे अधिक जो हो सकता है वह यह है कि पक्षकारों की सुनवाई के बाद मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाएगा।

3. “हर दिन की देरी को स्पष्ट किया जाना चाहिए” का मतलब यह नहीं है कि एक पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। हर घंटे की देरी, हर सेकंड की देरी क्यों नहीं? सिद्धांत को तर्कसंगत सामान्य ज्ञान व्यावहारिक तरीके से लागू किया जाना चाहिए।

4. जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक दूसरे के खिलाफ खड़े होते हैं, तो पर्याप्त न्याय के कारण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि दूसरा पक्ष यह दावा नहीं कर सकता कि उसे गैर-जानबूझकर की गई देरी के कारण अन्याय करने का अधिकार है।

5. ऐसी कोई धारणा नहीं है कि देरी जानबूझकर, या दोषपूर्ण लापरवाही के कारण, या दुर्भावना के कारण हुई है। देरी का

सहारा लेने से वादी को कोई लाभ नहीं होता। वास्तव में वह गंभीर जोखिम उठाता है।

6. यह समझना चाहिए कि न्यायपालिका का सम्मान तकनीकी आधार पर अन्याय को वैध बनाने की उसकी शक्ति के कारण नहीं बल्कि इसलिए किया जाता है क्योंकि वह अन्याय को दूर करने में सक्षम है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है।

इस दृष्टिकोण से न्यायोन्मुख दृष्टिकोण अपनाते हुए, अपील की संस्था में देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण थे। यह तथ्य कि यह “राज्य” था जो माफी मांग रहा था न कि कोई निजी पक्ष, पूरी तरह से अप्रासंगिक था। कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत मांग करता है कि सभी वादियों, जिसमें वादी के रूप में राज्य भी शामिल है, के साथ समान व्यवहार किया जाए और कानून को निष्पक्ष तरीके से लागू किया जाए। जब “राज्य” ही देरी की माफी के लिए प्रार्थना करने वाला आवेदक है, तो उसके साथ सौतेला व्यवहार करने का कोई औचित्य नहीं है। वास्तव में अनुभव से पता चलता है कि एक अवैयक्तिक तंत्र (मामले के प्रभारी किसी भी व्यक्ति को अपील के अधीन किए जाने वाले निर्णय से सीधे तौर पर चोट या चोट नहीं पहुंचती है) और नोट बनाने, फाइल को आगे बढ़ाने और जिम्मेदारी से बचने की नीति से प्रभावित विरासत में मिली नौकरशाही कार्यप्रणाली के कारण, इसकी ओर से देरी को समझना कम कठिन है, हालांकि इसे स्वीकार करना अधिक कठिन है। किसी भी मामले में, राज्य जो समुदाय के सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करता है, वह वादी-अवांछित स्थिति

का हकदार नहीं है। इसलिए न्यायालयों को "पर्याप्त कारण" की व्याख्या के दौरान प्रावधान की भावना और दर्शन से अवगत होना चाहिए। इसलिए, मामले में इसके आवेदन में भी यही दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए, ताकि गुण-दोष के आधार पर निष्पक्ष न्याय किया जा सके, न कि गुण-दोष के आधार पर निर्णय को विफल करने वाले दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जा सके। वर्तमान अपील को जन्म देने वाले मामले के तथ्यों की ओर मुड़ते हुए, हम संतुष्ट हैं कि देरी के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा अपील को समय-बाधित बताकर खारिज करने के आदेश को रद्द किया जाता है। देरी को माफ किया जाता है। और मामले को उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाता है। उच्च न्यायालय अब दोनों पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद गुण-दोष के आधार पर अपील का निपटारा करेगा।"

इसलिए न्यायालयों का दृष्टिकोण न्यायोन्मुखी होना चाहिए और तकनीकी आधार पर अन्याय को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

11. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सरदार अमरजीत सिंह कालरा बनाम प्रमोद गुप्ता** के मामले में (2003) 3 एससीसी 272 में पारा 26 में इस प्रकार माना है:

"26. प्रक्रिया के कानून प्रभावी ढंग से विनियमित करने, सहायता करने और वास्तविक न्याय करने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए हैं और व्यक्तिगत, संपत्ति और अन्य कानूनों के तहत नागरिकों के वास्तविक अधिकारों के गुण-दोष पर निर्णय को रोकने के लिए नहीं हैं। प्रक्रिया को हमेशा न्याय की दासी के

रूप में देखा गया है और इसका उद्देश्य न्याय के कारण को बाधित करना या न्याय की विफलता को पवित्र बनाना नहीं है। दीवानी प्रक्रिया के आदेश 22 में निहित प्रावधानों और उसके बाद के संशोधनों को ध्यान से पढ़ने से इस दृष्टिकोण को बल और समर्थन मिलेगा कि उन्हें प्रभावी न्यायनिर्णयन में उनकी निरंतरता और परिणति सुनिश्चित करने के लिए तैयार किया गया था, न कि कार्यवाही की आगे की प्रगति को धीमा करने के लिए और इस तरह समान रूप से रखे गए अन्य लोगों को तब तक गैर-मुकदमा नहीं किया जाता है जब तक कि संपत्ति या किसी दावे पर उनके अलग और स्वतंत्र अधिकार बरकरार रहते हैं और कार्यवाही में एक या दूसरे की मृत्यु के कारण हमेशा के लिए नहीं खो जाते हैं। आदेश 22 में निहित प्रावधानों को सिद्धांत के कठोर मामले के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि न्याय के प्रशासन में सुविधा के लचीले उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए। यह तथ्य कि खाता को संयुक्त कहा गया था, तब तक कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है, जब तक कि उनमें से प्रत्येक के पास संपत्ति में अपने स्वतंत्र, अलग और अलग हिस्से थे जैसा कि जमाबंदी में अलग-अलग रूप से दर्शाया गया है। हमारा यह भी मानना है कि उच्च न्यायालय को, उपशमन के प्रश्न पर अपनी धारणा के आधार पर, अभियोग के लिए आवेदनों को स्वीकार कर लेना चाहिए था, भले ही आवेदन दाखिल करने में देरी का कारण गंभीर हो, अन्यथा यह अन्य अपीलकर्ताओं के

अधिकारों को खतरे में डाल देगा, भले ही उनकी कोई गलती न हो। यदि उच्च न्यायालय ने सकारात्मक और रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया होता, तो न्याय के हितों की बेहतर ढंग से रक्षा होती, न कि केवल अन्य के दावों के गुण-दोष के आधार पर निर्णय को रोकने की पूरी प्रक्रिया को बाधित किया होता। उच्च न्यायालय द्वारा उपशमन, क्षमा और कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाने के आवेदनों को अस्वीकार करना, मामले की विशिष्ट प्रकृति के आधार पर, न्यायालय की शक्ति का न्यायसंगत या उचित प्रयोग या वास्तविक, प्रभावी और पर्याप्त न्याय करने के न्यायालय के घोषित उद्देश्य के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है। इस तथ्य के आलोक में कि प्रत्येक अपीलकर्ता के पास अपना स्वतंत्र और विशिष्ट अधिकार था जो किसी एक या दूसरे अपीलकर्ता पर निर्भर नहीं था, उच्च न्यायालय द्वारा अपीलों को पूरी तरह से खारिज करना उसकी शक्तियों का उचित, तर्कसंगत या न्यायसंगत और उचित प्रयोग नहीं है। यदि यह भी माना जाए कि उनका साझा हित था, तो न्याय के हित में यह आवश्यक होगा कि शेष अन्य अपीलकर्ताओं को उन अन्य लोगों के लाभ के लिए अपील जारी रखने की अनुमति दी जाए, जो न्यायालय के समक्ष नहीं हैं और न ही समग्र रूप से कार्यवाही को बाधित करें और न ही अन्य लोगों को अनुपयुक्त बनाएं।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय [कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण और सरदार

अमरजीत सिंह कालरा (उपरोक्त)] के दो निर्णयों को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है

कि न्यायालयों का प्रयास अन्याय को दूर करने की दिशा में होना चाहिए और प्रक्रियात्मक कानून न्याय के कारण को बाधित करने या न्याय की विफलता को पवित्र बनाने के लिए नहीं हो सकते और न ही कभी इरादा रखते हैं।

13. चूंकि ये आदेश 1987 में पारित किए गए थे, इसलिए डिक्री धारकों को इधर-उधर भटकना पड़ रहा है और इस स्तर पर जब बंधक और उसके मोचन के बारे में तथ्य विवादित नहीं हैं, केवल इसलिए कि बंधककर्ता की याचिका में उसके विषय-वस्तु का सही नामकरण नहीं था, उसे राहत देने से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता, जिसके वह 1987 से हकदार हो गया था।

14. डिक्री धारकों की दुर्दशा के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *जिनी धनराजगीर और अन्य बनाम शिबू मैथ्यू और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 643* और *प्रदीप मेहरा बनाम हरिजीवन जे. जेठवा (अब दिवंगत एलआरएस) एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1395* में रिपोर्ट किया गया के मामलों में उनकी स्थिति पर ध्यान दिया है, जबकि *राज दरभंगा के महाप्रबंधक, कोर्ट ऑफ वार्ड्स बनाम महाराजा कुमार रामापुत सिंह* के मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले को ध्यान में रखा गया, *(1871-72)14 एमआईए 605, (1872) एससीसी ऑनलाइन पीसी 16* में भी रिपोर्ट किया गया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इतने समय बीत जाने के बाद भी डिक्रीधारकों की परेशानियां कम नहीं हुई हैं और निष्पादन कार्यवाही का उपयोग निर्णय-ऋणियों द्वारा दंड से मुक्त होकर किया जा रहा है, जो निष्पादन कार्यवाही को विफल करने के लिए हर प्रावधान का अपने लाभ के लिए पूरी तरह से शोषण करते हैं, जिससे पूरी प्रक्रिया एक तमाशा बन जाती है और अदालतें बेईमान वादियों के जाल में अनजाने में उपकरण बन जाती हैं।

15. डिक्री का न होना कोई बड़ी बाधा नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *टोपनमल छोटामल बनाम कुंदोमल गंगाराम एवं अन्य, एआईआर 1960 एससी 388* में

रिपोर्ट किए गए राजिंदर कुमार बनाम कुलदीप सिंह एवं अन्य, मोहिंदर कुमार गुप्ता बनाम कुलदीप सिंह एवं अन्य तथा एस.के. गुप्ता (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम कुलदीप सिंह एवं अन्य (2014) 15 एससीसी 529 में रिपोर्ट किए गए, मीनाक्षी सेक्सेना एवं अन्य बनाम ईसीजीसी लिमिटेड एवं अन्य, (2018) 7 एससीसी 479 में रिपोर्ट किए गए तथा सांवरलाल अग्रवाल एवं अन्य बनाम अशोक कुमार कोठारी एवं अन्य ने (2023) 7 एससीसी 307 में रिपोर्ट किया, जिसमें प्रस्ताव को बहुत स्पष्ट किया गया कि अस्पष्टता के मामले में, निष्पादन न्यायालय निर्णय से मार्गदर्शन ले सकता है और यहां तक कि दलीलों का भी संदर्भ ले सकता है।

16. वर्तमान मामले में, कोई अस्पष्टता नहीं हो सकती क्योंकि आदेश दिनांक 30.06.1987 बहुत स्पष्ट और विशिष्ट है और विद्वान निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस बात को लेकर कोई भ्रम नहीं हो सकता कि आदेश को कैसे निष्पादित किया जाए।

17. इसके अलावा, याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क यह है कि निष्पादन मामला सीमा कानून द्वारा वर्जित है और विलय के सिद्धांत का कोई आवेदन नहीं है, लेकिन मुझे डर है कि इस बिंदु पर प्रस्तुत तर्क बिना किसी सार के है क्योंकि दोनों मुद्दों पर पहले से ही दीवानी संशोधन संख्या 206/2004 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आदेश दिनांक 13.12.2004 के तहत विचार किया गया था और उसे नकार दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि दिनांक 09.07.2003 को दायर निष्पादन मामला 12 वर्ष की सीमा के वैधानिक प्रावधान के भीतर था क्योंकि सीमा दिनांक 10.07.1991 से गिनी गई थी जब विद्वान परीक्षण न्यायालय के आदेश को उच्च न्यायालय ने अपने पुनर्निरीक्षण क्षेत्राधिकार में पुष्टि की थी।

18. यह तर्क कि दिनांक 30.06.1987 का आदेश विविध मामला संख्या-10/1986 में पारित किया गया था एक मध्यवर्ती आदेश था और दिनांक 08.01.1996 के

अंतिम आदेश के साथ विलय नहीं किया गया था, फिर से विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि विविध मामला संख्या 10/1986 को चूक के आधार पर खारिज करने का संबंधित निष्पादन मामले पर कोई असर नहीं पड़ता है क्योंकि निष्पादन मामला संख्या 02/2003 विविध मामला संख्या 10/1986 में पारित दिनांक 30.06.1987 के आदेश के निष्पादन के लिए दायर किया गया है जो अन्य कारणों से जारी रहा और बहुत बाद में दिनांक 08.01.1996 को चूक के कारण खारिज कर दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे कहा कि चूंकि मुख्य अंतिम आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई है, इसलिए कुछ अन्य कारणों से विविध मामले को जारी रखना या इसे खारिज करना निष्पादन मामले के उद्देश्य के लिए बिल्कुल भी महत्वपूर्ण नहीं था। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा **बिश्वनाथ प्रसाद सिंह (उपरोक्त)** के मामले पर भरोसा करना मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में कोई मदद नहीं करता है।

19. पूर्व में की गई चर्चाओं के आलोक में, मुझे निष्पादन वाद संख्या 02/2003 में विद्वान मुंसिफ द्वारा पारित दिनांक 05.07.2018 के विवादित आदेश में कोई कमी नहीं दिखती है, इसलिए इसकी पुष्टि की जाती है।

20. परिणामस्वरूप, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है।

(अरुण कुमार झा, न्यायमूर्ति)

वी.के.पांडे/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।